Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 9.134
Volume - 9, Issue - 7, July - 2026

DOIs:10.2018/SS/202607001 --:-- Research Paper / Article / Review

अथर्ववेद में राष्ट्र-चिन्तन

डॉ पूजा
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यट्, दयालबाग, आगरा
ई. मेल. pooja@dei.ac.in

1. प्रस्तावना

वैदिक साहित्य विश्व के इतिहास में मानव की अमूल्य धरोहर है,वेद सभ्यता, ज्ञान, दर्शन आदि के विश्वकोश हैं -**सर्वज्ञानमयो हि सः** [1]अर्थात् वेद समस्त ज्ञानमय हैं। जिसमें मानव जीवन के आदर्शों, जीवन मूल्यों तथा जीवन प्रणाली का आदर्श प्रस्तुत किया गया है।वेद विश्व कल्याण तथा विश्वबंधुत्व की भावना के प्रतीक हैं–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम।
उदार चरितानां तु वसुधैवकुटुम्बकम।[2]

वैदिक साहित्य में सामान्यत: चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद) एवं ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदांग, षष्ठ-दर्शन तथा उपवेद आते हैं। वैदिक साहित्य के विभिन्न मंत्रों में "राष्ट्र" का वर्णन है। विश्व में राष्ट्र शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में वाक् सूक्त के अन्तर्गत मिलता है। यजुर्वेद में राज्य के आध्यात्मिक स्वरूप का इस प्रकार वर्णन मिलता है-

शिरो मे श्री र्यशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि। राजा मेप्राणो अमृतम् सम्राट् चक्षुर् विराट् श्रोत्रम्।। जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः। मोदाः प्रमोदाऽङ्गुलीर अङ्गानि मित्रं मे सहः।। बाहू मे बलमिन्द्रियम् हस्तौ मे कर्म वीर्यम्। आत्मा क्षत्रम् उरो मम।। पृष्ठीर्मे राष्ट्रम् उदरम् असौ ग्रीवाश्च श्रोणी। उरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि।।[3]

प्रस्तुत मंत्र में पृष्ठ भाग को राष्ट्र कहा गया है जो समस्त जीवन का सुदृढ आधार है। अधिदैवत राष्ट्र के स्वरूप का निदर्शन कराता हुआ वेद कहता है- **राज्यसि प्राची। सम्राडसि प्रतीची। स्वराडस्युदीची। अधिपत्यसि बृहती।**[4]। वेदमन्त्रों में आए हुए ग्राम, ग्रामणी, विश्, विशांपति, जन, जनपद, गोप्ता आदि शब्दों को देखकर सम्पूर्ण राजतन्त्र को पाँच भागों में बाँटा गया है- 1. गृह, 2. कुल, 3. जन, 4. जनपद, 5. राष्ट्र। इस प्रकार वैदिक मन्त्रों में आए हुए राष्ट्र, राष्ट्री, राष्ट्रभृत् आदि शब्द अपना व्यापक अर्थ रखते हैं। आध्यात्मिक और आधिदैविक राष्ट्र के स्वरूप को अभिमुख कर उससे सन्तुलित पार्थिव राष्ट्र-जीवन की योजना हमारे मनीषियों ने की है।
अथर्ववेद में राष्ट्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है- **भद्रमिच्छन्तः ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे। ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तस्मै देवा उपसंनमन्तु।।**[5]

अथर्ववेद के उच्छिष्ट सूक्त में राष्ट्र को उच्छिष्ट में निहित बताया गया है। **'राजृ दीप्तौ'** धातु से करण अर्थ में ष्ट्रन् प्रत्यय से राष्ट्र शब्द निष्पन्न हुआ है। कोशों में राष्ट्र का अर्थ राज्य, देश, साम्राज्य, जिला, प्रदेश, दुर्ग, बल आदि किये गये हैं6 किन्तु जिस राष्ट्र की अवधारणा वेद में है, वह सम्पूर्ण त्रिलोक है, वह अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत अर्थ का प्रतिपादक है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, पुराणादि में राष्ट्र की सीमा व स्वरूप का चिन्तन विस्तृत रूप से अभिव्यक्त हुआ है। हमारा वर्तमान जगत् राष्ट्र के आधिभौतिक स्वरूप को ही महत्त्व प्रदान कर पा रहा है किन्तु इसके अध्यात्म व अधिदैव स्वरूप का दर्शन कराने वाले मन्त्रों का भी निदर्शन वर्तमान समाज के लिए उपादेय होगा।
आदर्श राष्ट्र जीवन की संकल्पना में व्यक्तिगत तथा सामूहिक जीवन का बोध तथा आदर्श गुणों का वर्णन किया गया है। इसमें स्थान-स्थान पर राष्ट्र पुरुषों, राजाओं, सेनापतियों तथा विद्वानों को श्रेष्ठतम गुणों की वृद्धि तथा कर्तव्य का बोध कराया गया है। राजा हो

[1] मनुस्मृति,2,7
[2] महोपनिषद्,अद्याय4,श्लोक71
[3] यजुर्वेद,20
[4] कृष्णयजुर्वेद,14.4.2
[5] अथर्ववेद19.41.1

अथवा प्रजा, सभी से राष्ट्र के प्रति कर्तव्य की पूर्ति का आह्वान है, न कि अधिकारों के अहंकारों की अभिव्यक्ति का। यदि वेदों के कुछ मंत्रों का ही अवलोकन करें तो वैदिक राष्ट्रवाद का सर्व कल्याणकारी बोध होता है

2.शोधसारः -

अथर्ववेद राष्ट्रोत्थान की सर्वोत्तम कृति मानी जाती है। मातृभूमि के प्रति इतनी प्रगाढ़ भक्ति की अभिव्यक्ति विश्व के किसी भी अन्य ग्रन्थ में दुर्लभ है। इसे राष्ट्र निर्माण का ग्रन्थ माना जाता है। राष्ट्र कैसा हो? राजा-प्रजा के सम्बंध कैसे हों? अधिकारियों के कर्तव्य क्या हों, इसमें इसका विवरण दिया गया है।

अथर्ववेद के एक पूरे अध्याय (12वां उपसर्ग) के प्रथम 63 मंत्र तो राष्ट्र भावना को पूर्णत: समर्पित हैं। इसे पृथ्वी सूक्त अथवा भूमि सूक्त भी कहा गया है। प्रत्येक मंत्र राष्ट्र की जाग्रत भावना का द्योतक है, यह राष्ट्र वन्दना का मधुरतम संगीत है, जो हृदयंगम करने वाला है।[6]

वेदों में राजा को पृथ्वी या राष्ट्र का शासक या पालक नहीं कहा गया है और न ही वर्तमान काल की तरह कुछ देशों में प्रयुक्त संज्ञा- राष्ट्राध्यक्ष, राष्ट्रपिता, राष्ट्र संस्थापक आदि कहा गया है, अपितु उसकी सबसे सम्मानजनक उपाधि "राष्ट्रपुत्र" या "राष्ट्र सेवक" दी गई है। अथर्ववेद में पृथ्वीमाता या मातृभूमि अपना राष्ट्रमाता के प्रति कर्तव्यों का विश्लेषण बार-बार किया है। पृथ्वीसूक्त के प्रथम मंत्र में ही सत्यनिष्ठा, परम सत्य व्यवस्था, तेजयुक्त दक्षता, तप और साधना, ब्रह्मज्ञान तथा याज्ञिक व्यवहार, पृथ्वी को धारण करने वाले तत्व बतलाये गए हैं। यह कहा गया है कि यह पृथ्वी न केवल भूतकाल या भविष्य जनों को व्यक्त करती है बल्कि वर्तमान में समस्त राष्ट्रजनों की चिंता करती है।

अथर्ववेद भारतीय वैदिक साहित्य का वह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जिसमें आध्यात्मिक विषयों के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और राष्ट्रीय चेतना का भी सशक्त रूप देखने को मिलता है। इसमें राष्ट्र को केवल भौगोलिक इकाई न मानकर भूमि, प्रजा, शासन, धर्म, अर्थव्यवस्था, सुरक्षा और सांस्कृतिक एकता के समन्वित स्वरूप के रूप में देखा गया है। प्रस्तुत शोध-पत्र में अथर्ववेद के प्रमुख सूक्तों के आधार पर राष्ट्र-चिन्तन की अवधारणा, उसके घटक तत्त्व, राजधर्म, सामाजिक एकता, राष्ट्र-रक्षा तथा पर्यावरण-दृष्टि का विश्लेषण किया गया है।

3.अथर्ववेद में राष्ट्र की माता के रुप में अवधारणा-

भारत देश में राष्ट्र को भारत माता कहा जाता है,इसका आधार भूमि सूक्त ही है। भूमि सूक्त में मातृभूमि के प्रति प्रेम या राष्ट्र भक्ति का सन्देश दिया गया है। पृथ्वी को माता कहा गया है। माता गर्भ में रखती है और पोषण देती है। तरुण होने पर शुभाशीष देती है। पृथ्वी भी ऐसी ही है। हम सब इसी में उगते हैं। सभी सांसारिक व आध्यात्मिक कार्यों का स्थल यह पृथ्वी ही है। मोक्ष या मुक्ति के प्रयत्नों का आधार भी यही पृथ्वी है। मोद-प्रमोद और आनन्द का क्षेत्र भी पृथ्वी है। हम सबकी काया पृथ्वी से बनती है इसलिए देश के प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी मातृभूमि से प्रेम करे। भूमि सूक्त भारतीय राष्ट्रवाद का आधार है। इस सूक्त में पृथ्वी की राष्ट्रीय अवधारणा विकसित हुई है। इस सूक्त में मनुष्य एवं पृथ्वी के मध्य माँ एवं पुत्र के सम्बन्ध दर्शाये है -

माता भूमिः पुत्रो अ॒हं पृथिव्याः।[7] (यह भूमि मेरी माँ है और मैं इसका पुत्र हैं।)

सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्रायं में पयः ॥[8]

प्रत्येक देश के मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि सब स्थानों, सब अवस्थाओं और राजसभा, न्यायसभा, धर्मसभा आदि में अपने मातृभूमि के गुणों की महिमा जाने और उसका गुणगान करें। ऋषि ने सूक्त में कहा है कि अपनी मातृभूमि अपने देश के लिए सदैव उत्तम ही बोलना चाहिए। अपने देश के लिए अथवा अपनी मातृभूमि के लिए कभी कटु वचन अथवा अपशब्द नहीं होनी चाहिए। ऋषि ने सूक्त में प्रार्थना की है जो ग्राम, अरण्य, सभा, संग्राम (नगर) एवं समिति है, उनमें हम तुम्हारे विषय में अच्छा ही बोलें-

ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधि भूम्ययाम् । ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारुं वदेम ते ।।[9]

वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम[10] । वेदों में मानव मात्र के लिए

कल्याणकारी उपदेश निहित हैं, जो देश काल की सीमाओं में प्रभावित नहीं है। वेदवाक्य राष्ट्रप्रेम, देशसेवा और उत्सर्ग के प्रेरक हैं। वेद आर्यों के सर्वप्रधान तथा सर्वमान्य धार्मिक ग्रंथ हैं। वेदों में राष्ट्रीय भावना का समावेश है–

---

[6] अथर्ववेद,12.1.1

[7] अथर्ववेद,भूमि सूक्त 12.1.12

[8] अथर्ववेद,भूमि सूक्त 12.1.12

[9] अथर्ववेद,भूमि सूक्त 12.1.56

[10] अथर्ववेद,भूमि सूक्त 12.1.62

अथर्ववेद में देशोत्थान के उपाय-

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता[11](अथर्ववेद 12\5\1)

प्रस्तुत मन्त्र में किसी भी देश के मानव समाज की वास्तविक उन्नति तथा सुख शान्ति की प्राप्ति का महत्वपूर्ण उपदेश दिया गया है। मन्त्र के प्रथम भाग राष्ट्र को सुखी तथा समृद्ध बनाने के लिए वेद का प्रथम परामर्श है कि राष्ट्र में श्रम की प्रतिष्ठा होनी चाहिए..द्वितीय राष्ट्रीय समृद्दि और स्वातन्त्रय की रक्षा के लिए तप की आवश्यकता है। तृतीय ब्रह्मणा' ।ब्रह्मणा के अनेक अर्थों में से यहाँ मुझे अभिप्रेत है आस्तिकता। कि राष्ट्र की शान्ति और उन्नति के लिए आस्तिकता और धार्मिकता अत्यन्त आवश्यक हैं।

इसके आगे मन्त्र की चौथी बात है- 'वित्त ऋते श्रिताः '-

'भोगने-योग्य समस्त धनादि पदार्थों को न्यायपूर्वक कमावें और न्यायपूर्वक ही उनका उपभोग करें।' जहाँ नागरिकों में यह भावना होगी, वहाँ अनावश्यक असन्तुलन नहीं होगा। एक ओर उपभोग की असीम सामग्री और दूसरी ओर पेट भरने को रोटी नहीं, तन ढकने को वस्त्र नहीं, सिर छुपाने को झोंपड़ी नहीं - ऐसे राष्ट्र में शान्ति हो ही नहीं सकती।

अतः राष्ट्रोन्नति का यही वेदोक्त मार्ग है, अन्य नहीं।

भारत को स्वाधीन हुए अनेंको वर्ष हो गए,किन्तु देश की प्रगति और देशवासियों की मनःस्थिति को देखते हुए हालत सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती। अथर्ववेद के १२वें काण्ड का नाम पृथिवी सूक्त है। इसमें ६२ मन्त्र हैं। इन सभी मन्त्रों में देश के उत्थान, उसकी स्वाधीनता की रक्षा, नागरिकों के कर्तव्य आदि सभी बातों पर बहुत उच्चकोटि के विचार दिये गए हैं। हमारा विचारणीय यह मन्त्र पहला ही है।

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मं यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।
सा नौ भूतस्य भव्यंस्य पत्युरुं लोकं पृथिवी नंः कृणोतु ॥[12]अथर्व० १२।१।१

(सत्यम्) सत्य (बृहत्) उद्यम (ऋतम्) सरल, निश्छल व्यवहार (उग्रम्) वीरता (दीक्षा) नियमनिष्ठा, (तपः) द्वन्द्वों की चिन्ता किये बिना कर्त्तव्यपालन (ब्रह्म) आस्तिकता (यज्ञः) मिलकर काम करने की भावना [ये आठ गुण] (पृथिवीम्) मातृभूमि की स्वाधीनता को (धारयन्ति) धारण करते हैं, सुरक्षित रखते हैं। (भूतस्य) अतीतकाल की (भव्यस्य) भविष्यत् की (पत्नी) रक्षा करनेवाली (सा) वह (नः) हमारी (पृथिवी) मातृभूमि (नः) हमारे लिए (उरुम्) विस्तृत (लोकम्) क्षेत्र को (कृणोतु) करे।

मन्त्र में राष्ट्रोत्थान के लिए नागरिकों में आठ गुणों का होना आवश्यक बताया गया है। स्वाधीनता की रक्षा और देश के विकास के लिए अपने पूर्वजों के सद्गुणों को हम अपने जीवन में धारण करें। हानि पहुँचानेवाली उनकी त्रुटियों को जीवन में न आने दें तो वर्त्तमान में श्रम करके हम अपने भविष्य को उज्ज्वल बना लेंगे। प्रसिद्ध इतिहासकार यदुनाथ सरकार ने इस विषय में बहुत महत्त्वपूर्ण बात कही है-

"Nations live on their past, in their present for their future."-जातियाँ भूत के आधार पर वर्त्तमान में काम करके भविष्यत् का निर्माण करती हैं।' मन्त्र में यही कहा है कि वह मातृभूमि भूत और भविष्यत् को सुरक्षित करके **"नः उरुं लोकं कृणोतु"** जीवन में सुविधा से सानन्द जीवन-यापन के लिए विशाल क्षेत्र और अवसर दे।

प्रभु कृपा करें कि हम अपना कर्त्तव्य निभाकर मातृभूमि को समुन्नत करें।

नसीबा जो जागा है अब के हमारा। बिके हाथ जिनके उन्हें मोल लेंगे ॥

अथर्ववेद के सौमनस्य सुक्त में पारस्परिक स्नेह, सौहार्द व समानता की कामना की गई है। परिवार को राष्ट्र की मूल इकाई बताया है। यदि परिवार में शांति व प्रेम है तो समाज में शांति व्याप्त होगी। यदि परिवार में किसी प्रकार का क्लेश, कलह, द्वेष, वैमनस्य, ईर्ष्या नहीं होगी तो राष्ट्र में भी सर्वत्र सुख, शांति का साम्राज्य स्थापित होगा ।

मन्त्र का भावनात्मक सन्देश है कि भारत के मुसलमान, ईसाई,बौद्ध,पारसी आदि इस देश को पवित्र मातृभूमि मानकर रहना चाहें तो मन्त्र में बहुत ही महत्वपूर्ण परामर्श दिए गए हैं। इस भावना से विद्वेष की काली घटाएं छंट जाएंगी, देश की स्वाधीनता का प्रखर अंशुमाली अपने दिव्य आलोक से भारत के कोने-कोने को दीप्त कर देगा।

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम् ।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ।।[13]

[11] अथर्ववेद,12.5.1

[12] अथर्ववेद,12.11

[13] अथर्व० १२।१।४५

मन्त्र में कहा गया है कि जैसे एक परिवार में काले, गोरे, लम्बे और ठिगने मिलकर रहते हैं, जैसे परिवार में उग्र,सहनशील, भिन्न-भिन्न मनोवृत्ति के सदस्य तालमेल बैठाकर परिवार को चलाते हैं, उसी प्रकार **"नानाधर्माणम्**'- भिन्न-भिन्न प्रकार के मन्तव्यवाले,**"विवाचसम्"** - अनेक प्रकार की भाषा बोलनेवाले भी **"यथौकसम्"**
जैसे एक परिवार और घर में रहते हैं, उसी प्रकार "पृथिवी" - मातृभूमि पर भी उसी सौहार्द-स्नेह से रहें।
यदि किसी देश का यह सौभाग्योदय हो जावे तो मन्त्र के उत्तरार्ध में कमाल की उपमा देकर कहा- जैसे कामधेनु दुधारू गौ अपने पैरों को अविचल जमाकर अपने चारों स्तनों से दूध की धारा बहा देती है, उसी प्रकार यह मातृभूमि-रूपी गौ अपने दुग्धरूप अमूल्य रत्न, सोना, चाँदी, तांबा, लोहा, गन्धक, अभ्रक, कोयला, पैट्रोल, अन्न, औषध, फूल-फलादि रूप दुग्ध की धाराओं से देश को तृप्त और आप्लावित कर दे। प्रभु कृपा करें कि भारत के नागरिक वेद के इस उपदेश के अनुसार अपना विचार और आचार बनाकर स्वर्ग का आनन्द लें।
शक्तिशाली राष्ट्र की कल्पना भी अथर्ववेद में की गई है-

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ॥[14]

सुख-शान्ति को जानने और प्राप्त करनेवाले ऋषियों ने सर्वप्रथम सुख-दुःखादि द्वन्द्व-सहन की क्षमता नियम-व्रतादि को ग्रहण किया। उस तप और दीक्षा के आचरण से राष्ट्रीय भावना राष्ट्रीय बल और ओज, राष्ट्रीय प्रभाव तथा रौब उत्पन्न हुआ इसलिए इस राष्ट्र के सम्मुख देव भी, शक्ति-सम्पन्न भी झुकें, उचितरूप से सत्कार करें।
मन्त्र में मुख्य रूप से एक ही विचार दिया गया है कि-
देश को राष्ट्र का रूप देकर उसे शक्ति- सम्पन्न और गौरवास्पद बनाने के लिए आवश्यक है कि देशवासी तपस्वी और दीक्षित बनें। इन मुख्य गुणों के आचरण से देश में अतुल बल का उद्भव होगा और उसके ओजस्वी स्वरूप को देखकर बड़े-बड़े राष्ट्र उसके सम्मुख नतमस्तक होंगे।
इस मन्त्र में पहली बात कही गई है किसी देश में उसके उत्थान के लिए आवश्यक है कि उसके नागरिकों में तप और दीक्षा की भावना हो। योग के दूसरे अङ्ग - नियमों में 'तप' का तीसरा स्थान है। किसी भी लक्ष्य की पूर्ति के लिए बीच में आनेवाली समस्त बाधाओं को धैर्यपूर्वक सहते हुए आगे बढ़ते जाने का नाम तप है। इसीलिए शास्त्र में इसकी दूसरी परिभाषा **'तपो द्वन्द्वसहिष्णुत्वम्'**[15] भी की गई है। हानि-लाभ, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी आदि जितने भी द्वन्द्व (जोड़े) हैं, उनकी चिन्ता न करके कर्त्तव्य-पथ पर बढ़ते चले जाना तप कहाता है। इसी भावना से मिलती किसी शास्त्रकार ने तपस्वी की निम्न परिभाषा की है-

यस्य कार्यन्न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै तापस उच्यते ।।[16]

जिसके कामों में सर्दी-गर्मी, भय-प्रेम, ऐश्वर्य और निर्धनता बाधक नहीं बनते और जो निरन्तर लक्ष्य की ओर बढ़ता ही चला जाता है, उसे तपस्वी कहते हैं।
संस्कृत व्याकरण में दीक्ष धातु के मौण्ड्य,इज्या,नियम,व्रत और आदेश ,ये पांच अर्थ लिखे हैं।सार यह निकला कि राष्ट्र के उत्थान के लिए अच्छे व्रत, नियम और मिलकर काम करने के कुछ सङ्गठन बनाकर देश का शारीरिक, बौद्धिक और आर्थिक विकास करना चाहिए। ये सभी उत्कर्ष के साथ दीक्षा में समाहित हैं।
तप और दीक्षा के आचरण का लाभ यह होगा कि देश में राष्ट्रभाव जागृत होगा। एक नागरिक दूसरे के कष्ट को अपना कष्ट समझकर उसके निवारण में सहयोग करेगा। हमारे पैर में काँटा चुभता है, तो समस्त शरीर में वह वेदना अनुभव करता है। आँख घायल पैर को देखती है, हाथ काँटे को निकालने के लिए दौड़ पड़ते हैं और जबतक उस कष्ट के कारण काँटे को नहीं निकाल फैंकते, तबतक शान्ति से नहीं बैठते। दीक्षा भी समस्त राष्ट्र में इसी आत्मीयता की भावना को उत्पन्न करेगी।
इस भावना के आते ही देश में **"बलम् ओजश्च जातम्"** - प्राणशक्ति का सञ्चार होगा, राष्टवासियों का स्वाभिमान जाग जाएगा और फिर ऐसे सङ्गटित देश के सामने "**देवा उपसन्नमन्तु "** - अच्छे-अच्छे शक्तिशाली राष्ट्र भी घुटने टेककर नतमस्तक होंगे।
राष्ट्र को शक्तिशाली और सम्मानित बनाने के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इसके लिए आवश्यक है कि देश के वातावरण और शिक्षा को तप और दीक्षा के पवित्र मार्ग की ओर मोडा जावे।

---

[14] अथर्व० १९।४१।१

[15] भगवद्गीता

[16] विदुरनीति

इसी के साथ अथर्ववेद में वर्णन किया गया है कि राष्ट्र के कल्याण के लिए पति पत्नी को संयुक्त रुप से यज्ञ करना चाहिए-

यतस्त्रुचा मिथुना या सर्पयतः।
भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते।।[17]

राष्ट्र की समृद्धि के लिए जनसंख्या नियन्त्रण का निर्देश भी वेद में है- **असबाधं मध्यतो मानवानाम् ।**[18]
वेद का उपदेश है कि हम सदैव सुख और निर्भयता का अनुभव करें **स्वस्ति नो अभयं च नः।**[19]। सांमनस्य, सहृदयता और एकत्व या तादात्म्य को वेदचतुष्टय में विश्वकल्याण का एक साधन बताया है - **सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समुव्रता।**[20] विश्वशांति के लिए भूमिधारक तत्वों का पालन, संरक्षण और सदुपयोग अत्यंत आवश्यक है।

अथर्ववेद में राजा के कर्तव्य है-
1. वह पर्यावरण की सुरक्षा करें पृथ्वी को माता सदृश मानकर जल, वायु आदि प्रदूषण को रोकें। हम प्रकृति की सुरक्षा करेंगे तो प्रकृति हमारी रक्षा करेगी।
2. राष्ट्र को धन-धान्य से समृद्ध करें- **स ते राष्ट्रमनक्तु पयसा घृतेन।**[21]
3. राजा राष्ट्र की रक्षा और व्यवस्था को इतना सुव्यवस्थित करें कि राष्ट्र निरंतर उन्नति करें और सौभाग्यशाली हो - **इदं राष्ट्रं पिपृहि सौभगाय।**[22]
4. राजा अपने राज्य की विस्तार में सदा प्रयत्नशील रहें तथा अपने राष्ट्र को महान बनाएं - **बृहद् राष्ट्र संवेश्य ददातु।**[23]**।** ऐसे बृहद् राष्ट्र को संवेश्य कहा गया है, जिसमें अन्य लोगों का भी प्रवेश संभव हो और उन्हें सुख सुविधाएं प्राप्त हो।
इदं राष्ट्रं प्रविश सुनृतावत्। स त्वां राष्ट्राय सुभृतं बिभर्तु।।"[24]
लोगों में कर्तव्यनिष्ठा और अपने उत्तरदायित्व का जहाँ बोध हो वह राष्ट्र सुख समृद्धि से युक्त होता है। राष्ट्र के संचालन के लिए सभा और समिति का होना आवश्यक है। **'अर्चन् अनु स्वराज्यम्** स्वराज की अभिव्यक्ति है, स्वराज से राष्ट्र यशस्वी होता है

4. निष्कर्षः-
निष्कर्षतः वेदों में सर्वत्र राष्ट्रकल्याण की अवधारणा निहित है। तथा अथर्ववेद में राष्ट्र-चिन्तन अत्यन्त व्यापक और बहुआयामी है।अथर्ववेद में निहित राष्ट्र-चिन्तन वैदिक साहित्य की उस सुदृढ़ परम्परा को प्रकट करता है,अथर्ववेद के सूक्तों में राष्ट्र की समग्र अवधारणा—भूमि, जन, शासन, सामाजिक सौहार्द, आर्थिक समृद्धि और आध्यात्मिक चेतना—का संतुलित समन्वय स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। यह वेद व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य स्थापित करते हुए राष्ट्र को धर्म, सत्य, ऋत और न्याय के आधार पर संगठित करने की प्रेरणा देता है।

अथर्ववेद में 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' जैसे भाव राष्ट्र के प्रति आत्मीयता, कर्तव्यबोध और श्रद्धा को उद्घाटित करते हैं। भूमि-सूक्त में प्रकृति और राष्ट्र के बीच अविच्छिन्न सम्बन्ध को रेखांकित किया गया है, जिससे पर्यावरणीय चेतना और राष्ट्रीय उत्तरदायित्व का बोध होता है। साथ ही, राजा-प्रजा के आदर्श सम्बन्ध, सामाजिक एकता, परस्पर सहयोग, वाणी-मन-कर्म की शुद्धता तथा लोककल्याण की भावना को राष्ट्र की सुदृढ़ता का मूल माना गया है।

अतः यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेद का राष्ट्र-चिन्तन केवल प्राचीन वैदिक समाज की आवश्यकता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सार्वकालिक और सार्वभौमिक मूल्य प्रस्तुत करता है। आधुनिक राष्ट्र-निर्माण की चुनौतियों—सामाजिक विघटन, नैतिक पतन, पर्यावरण संकट और वैचारिक संघर्ष—के समाधान हेतु अथर्ववैदिक राष्ट्र-दृष्टि आज भी अत्यन्त प्रासंगिक है। इस प्रकार अथर्ववेद राष्ट्र को आध्यात्मिक चेतना, सामाजिक समरसता और नैतिक मूल्यों से सम्पन्न एक आदर्श इकाई के रूप में स्थापित करता है, जो मानव सभ्यता के सतत विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

---

[17] अथर्ववेद,20.25.03
[18] अथर्ववेद,12.14.1
[19] अथर्व.,11.2.31
[20] अथर्व.,6.74.1
[21] अथर्व.,3.8.1
[22] अथर्व, 7.35.1
[23] अथर्व,13.8.1
[24] अथर्व.13.1.1

सन्दर्भग्रन्थसूची :

1. शास्त्री, पं. शिवकुमार। श्रुतिसौरभ। दिल्ली,विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, 2011 ।
2. वेदालंकार, डॉ. रामनाथ। वेदमञ्जरी। अजमेर: हितकारी प्रकाशन समिति, 2018।
3. तीर्थ, स्वामी वेदानन्द। स्वाध्याय सन्दोह। अजमेर: आर्य साहित्य मण्डल।
4. अथर्ववेद। भाष्यकार: स्वामी दयानन्द सरस्वती। अजमेर: वैदिक यन्त्रालय / आर्य साहित्य मण्डल।
5. मनुस्मृति। भाष्यकार: स्वामी दयानन्द सरस्वती। अजमेर: आर्य साहित्य मण्डल।
6. श्रीमद्भगवद्गीता। गोरखपुर: गीता प्रेस, नवीन संस्करण।